रामगीता-(२)

[एक रामगीता अद्‌भुतरामायणके अन्तर्गत भी प्राप्त होती है, वहाँ इसका विस्तार अध्याय ११ से अध्याय १४ तक है। सीताहरणके पश्चात् ऋष्यमूकपर्वतपर विराजमान भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीके द्वारा जिज्ञासा करनेपर अपने तात्त्विक स्वरूपका जो उन्हें उपदेश देते हैं, वही रामगीताके नामसे विख्यात है, इसीके साथ ही इसमें सांख्य, योग एवं वेदान्ततत्त्वका प्रतिपादन करनेके बाद भक्तियोगका विवेचन किया गया है। अन्तिम अध्यायमें भगवान्‌ने अपनी विभूतियोंका प्रभावी वर्णन किया है। इस रामगीताको भी यहाँ सानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है—]

पहला अध्याय

भगवान् श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीको सांख्ययोगका उपदेश

रामः प्राह हनूमन्तमात्मानं पुरुषोत्तमः।
वत्स वत्स हनूमंस्त्वं भक्तो यत्पृष्टवानसि॥ १॥
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वावहितो मम।
अवाच्यमेतद्विज्ञानमात्मगुह्यं सनातनम्॥ २॥

पुरुषोत्तम श्रीरामने अपने भक्त हनुमान्‌से कहा—हे वत्स हनुमान्! तुम मेरे भक्त हो, अतः जो तुमने पूछा है, उसे मैं बता रहा हूँ। मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो। यह सनातन विज्ञान अपनेमें गोपनीय और यत्र-तत्र कहनेयोग्य नहीं है॥ १-२॥

यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः।
इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मभूता द्विजोत्तमाः॥ ३॥

इस विज्ञानको देवता और प्रयत्नशील द्विज साधक भी नहीं जानते। इसी ज्ञानका आश्रय लेकर श्रेष्ठ ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप हो गये॥ ३॥

न संसारं प्रपश्यन्ति पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः।
गुह्याद् गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः।
वंशे भक्तिमतो ह्यस्य भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥ ४॥

वे पुरातन ब्रह्मज्ञानी संसारको (सत्य) नहीं देखते। यह ज्ञान गुह्यसे भी परम गुह्य है और प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है। इस (विज्ञानवेत्ता)-के वंशमें जन्म लेनेवाले भी भक्तिमान् ब्रह्मवादी होते हैं॥ ४॥

आत्मा यः केवलः स्वच्छः शान्तः सूक्ष्मः सनातनः॥ ५॥
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः।
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः॥ ६॥

आत्मा केवल, स्वच्छ, शान्त, सूक्ष्म और सनातन है। वह (आत्मा) सबके अन्दर स्पष्ट, प्रकाशमान और चिन्मय रूपसे स्थित है। वही अन्तर्यामी पुरुष है, वही प्राण है और वही परमेश्वर है॥ ५-६॥

स कालाग्निस्तदव्यक्तं सद्यो वेदयति श्रुतिः।
अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते॥ ७॥

वह कालाग्नि है, वही अव्यक्त है और श्रुति (शब्दप्रमाणसे) उसका ज्ञान कराती है। संसारकी उत्पत्ति और लय उसीमें होता है॥ ७॥

मायावी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः।
न चाप्ययं संसरति न च संसारयेत्प्रभुः॥ ८॥

वह सर्वसमर्थ मायावी अपनी मायासे अनेक रूप (शरीर) धारण करता है। यह कहीं आता-जाता नहीं और न किसीको संचालित करता है॥ ८॥

नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः।
न प्राणो न मनो व्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च॥ ९॥

न रूपरसगन्धाश्च नाहङ्कर्ता न वागपि।
न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं प्लवङ्गम॥ १०॥

हे वानरश्रेष्ठ! न तो यह पृथ्वी है, न जल, न तेज, न वायु अथवा आकाश है। निश्चय ही न यह प्राण है, न मन और न शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध है। यह न अहंकार है, न वाणी-हाथ-पैर-पायु-उपस्थ आदि (कर्मेन्द्रियरूप) है॥ ९-१०॥

न कर्ता न च भोक्ता च न प्रकृतिपूरुषौ।
न माया नैव च प्राणश्चैतन्यं परमार्थतः॥ ११॥

यह न कर्ता है न भोक्ता है, न यह प्रकृति-पुरुष ही है। यह न माया है, न प्राण है। यह यथार्थमें (शुद्ध) चैतन्यमात्र है॥ ११॥

तथा प्रकाशतमसो सम्बन्धो नोपपद्यते।
तद्वदेव न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः॥ १२॥

जैसे प्रकाश और अन्धकारका परस्पर सम्बन्ध सम्भव नहीं होता, उसी प्रकार परमात्मा और (सांसारिक) प्रपंचका भी परस्पर सम्बन्ध सम्भव नहीं है॥ १२॥

छायातरू यथा लोके परस्परविलक्षणौ।
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः॥ १३॥

जैसे संसारमें वृक्ष और उसकी छाया—ये दो भिन्न पदार्थ हैं, उसी प्रकार परमात्मा और प्रपंच परस्पर सर्वथा भिन्न हैं॥ १३॥

यद्यात्मा मलिनोऽस्वस्थो विकारी स्यात्स्वभावतः।
नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि॥ १४॥

यदि आत्मा स्वभावतः मलिन, अस्वस्थ और विकारवान् हो तो उसकी मुक्ति सैकड़ों जन्मोंमें भी सम्भव नहीं होगी॥ १४॥

पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः।
विकारहीनं निर्दुःखमानन्दात्मानमव्ययम्॥ १५॥

किंतु जीवन्मुक्त मुनिजन तो अपनी आत्माको यथार्थतः विकारहीन,

दुःखरहित, अव्यय और आनन्दस्वरूप देखते हैं॥ १५॥

अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशः स्थूलेति या मतिः।
साप्यहङ्कृतिसम्बन्धादात्मन्यारोप्यते जनैः॥ १६॥

मैं कर्ता हूँ, सुखी-दुःखी हूँ, दुबला-मोटा हूँ—इस प्रकारका जो भाव बनता है, उसे अहंकारके सम्बन्धसे लोग आत्मापर आरोपित कर लेते हैं॥ १६॥

वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम्।
भोक्तारमक्षयं बुद्ध्वा सर्वत्र समवस्थितम्॥ १७॥

वेदके तत्त्वज्ञ उस अनश्वर भोक्ताको सर्वत्र व्याप्त जानकर उस साक्षी (आत्मा)-को प्रकृतिसे परे कहते हैं॥ १७॥

तस्मादज्ञानमूलोऽयं संसारः सर्वदेहिनाम्।
अज्ञानादन्यथा ज्ञातं तच्च प्रकृतिसङ्गतम्॥ १८॥

इसलिये सभी देहधारियोंके लिये यह संसार अज्ञानमूलक ही है। प्रकृतिके संसर्गसे अज्ञानके कारण यह (संसार) अन्यथा प्रतीत होता है॥ १८॥

नित्योदितः स्वयंज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः।
अहङ्काराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते॥ १९॥

आत्मा तो नित्य जाग्रत्, स्वयंप्रकाश, सर्वत्र व्याप्त, परम पुरुष है। अहंकारके अज्ञानके कारण यह (जीव) अपनेको कर्ता मान बैठता है॥ १९॥

पश्यन्ति ऋषयो व्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः॥ २०॥
तेनात्र सङ्गतो ह्यात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः।
आत्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्यन्ति तत्त्वतः॥ २१॥

ऋषिगण सत् और असत् रूप नित्य आत्मतत्त्वका निश्चय ही अनुभव करते हैं। वे ब्रह्मवादी प्रधान प्रकृतिको कारणरूप जानकर

उससे सम्बद्ध होनेके कारण कूटस्थ, निरंजन, अक्षरब्रह्मको तत्त्वतः नहीं जान पाते॥ २०-२१॥

अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत्।
रागद्वेषादयो दोषाः सर्वभ्रान्तिनिबन्धनाः॥ २२॥

अनात्मतत्त्वमें आत्माकी (भ्रान्ति) बुद्धि होनेसे ही दुःख और सुख होते हैं। राग-द्वेष आदि दोष भी उसी भ्रान्तिसे जुड़े रहते हैं॥ २२॥

कार्ये ह्यस्य भवेदेषा पुण्यापुण्यमिति श्रुतिः।
तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः॥ २३॥

इसी कारण कर्ममें पाप-पुण्यका समावेश शास्त्रानुसार हो जाता है और उसके वशीभूत सभीको देह धारण करना पड़ता है॥ २३॥

नित्यः सर्वत्रगो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।
एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः॥ २४॥

आत्मा तो नित्य, सर्वव्यापी, कूटस्थ, दोषरहित और एक (अद्वितीय) है, किंतु मायाकी शक्तिसे उसमें भेद प्रतीत होता है, स्वभावतः नहीं॥ २४॥

तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः।
भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया॥ २५॥

इसलिये ज्ञानीजन यथार्थमें अद्वैतकी ही सत्ता कहते हैं, किंतु माया आत्माके साथ लगी रहनेके कारण वह अव्यक्त आत्मा भी स्वभावतः भेदवाली प्रतीत होती है॥ २५॥

यथा हि धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्।
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते॥ २६॥

जैसे धुएँके सम्पर्कसे आकाश मलिन नहीं हो जाता (स्वभावतः स्वच्छ बना रहता है), उसी प्रकार अन्तःकरणमें उठनेवाले (राग-द्वेषादि) भावोंसे आत्मा लिप्त नहीं होता॥ २६॥

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलः।
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते॥ २७॥

जैसे स्फटिक-मणि अपनी (स्वच्छ) प्रभासे प्रकाशित रहती है, उसी प्रकार उपाधिरहित निर्मल आत्मा भी स्वयंप्रकाशित रहता है॥ २७॥

ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः ।
अर्थस्वरूपमेवाज्ञाः पश्यन्त्यन्ये कुबुद्धयः॥ २८॥

बुद्धिमान् लोग इस संसारको ज्ञान-स्वरूप (आभासमात्र) कहते हैं, किंतु मंदबुद्धि (मूर्ख) इसे यथार्थ (सच्चा) समझते हैं॥ २८॥

कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावतः।
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्भ्रान्तदृष्टिभिः॥ २९॥
यथा संलक्ष्यते व्यक्तः केवलः स्फटिको जनैः।
रक्तिकाव्यवधानेन तद्वत्परमपूरुषः॥ ३०॥

भ्रान्तचित्त लोगोंको कूटस्थ, निर्गुण, सर्वव्यापी, स्वभावतः चैतन्यरूप आत्मतत्त्व भी पदार्थ-जैसा प्रतीत होता है। जैसे लोग शुद्ध स्फटिक मणिको भी लाल पदार्थके संसर्गसे लाल ही देखते हैं, उसी प्रकार परमात्मतत्त्वके प्रति भी भ्रान्ति रहती है॥ २९-३०॥

तस्मादात्माक्षरः शुद्धो नित्यः सर्वगतोऽव्ययः।
उपासितव्यो मन्तव्यः श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभिः॥ ३१॥

इसलिये मुमुक्षु लोगोंको अक्षर, शुद्ध, सनातन, सर्वव्यापी, अव्यय, आत्मतत्त्वका ही चिन्तन, मनन, श्रवण तथा अनुसन्धान करना चाहिये॥ ३१॥

यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्रगं सदा।
योगिनोऽव्यवधानेन तदा सम्पद्यते स्वयम्॥ ३२॥

जब योगसाधकके मनमें सदा सर्वव्यापी चैतन्यका प्रकाश निरन्तर

बना रहता है, तब उसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धि होती है॥ ३२॥

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते स्वयम्॥ ३३॥

जब वह (योगी) सभी प्राणी-पदार्थोंको स्वयं अपने भीतर और स्वयंको सभीमें देखने लगता है, तब वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥ ३३॥

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभि पश्यति।
एकीभूतः परेणासौ तदा भवति केवलः॥ ३४॥

जब वह अन्य प्राणी-पदार्थोंको अपने भीतर ही देखता, तब अन्य की सत्तासे रहित परमात्मासे एकीभूत हुआ वह योगी केवलीभावको प्राप्त हो जाता है॥ ३४॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः।
तदासावमृतीभूतः क्षेमं गच्छति पण्डितः॥ ३५॥

जब उस योगीके हृदयसे सम्पूर्ण कामनाओंका लोप हो जाता है, तब वह प्रज्ञासम्पन्न अमृतत्वको प्राप्त होकर परम कल्याणका भागी हो जाता है॥ ३५॥

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति।
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ३६॥

जब विभिन्न भूत-पदार्थोंमें योगीकी एकत्व दृष्टि हो जाती है, तब उसी (दृष्टि)-का विस्तार होकर उसे ब्रह्मभावकी प्राप्ति हो जाती है॥ ३६॥

यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थतः।
मायामात्रं जगत्कृत्स्नं तदा भवति निर्वृतः॥ ३७॥

जब वह योगी यथार्थ रूपमें केवल आत्माके अस्तित्वको देखने लगता है और सम्पूर्ण (बाह्य) जगत्को मायामात्र जान लेता है, तब उसे परमशान्ति प्राप्त होती है॥ ३७॥

यदा जन्मजरादुःखव्याधीनामेकभेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिवः॥ ३८॥

जब उसे जन्म, बुढ़ापा, दुःख, रोग आदिकी एकमात्र औषधि ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, तब वह योगी साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है॥ ३८॥

यथा नदी नदा लोके सागरेणैकतां ययुः।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत्॥ ३९॥

जैसे संसारके (विभिन्न) नदियाँ और नद सागरमें जाकर एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार आत्मा उस अक्षर, निष्कल परमात्मतत्त्वमें मिलकर एक हो जाता है॥ ३९॥

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थितिः।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति॥ ४०॥

इसलिये (यथार्थमें) ज्ञानकी ही सत्ता है, न तो प्रपंचकी और न सृष्टिकी कोई स्थिति है। संसारमें अज्ञानसे ज्ञान ढका रहता है, इस कारण लोगोंमें मोह उत्पन्न हो जाता है॥ ४०॥

तज्ज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
अज्ञानमिति तत्सर्वं विज्ञानमिति मे मतम्॥ ४१॥

वह ज्ञान निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अविनाशी है, शेष सभी (दृश्यमान प्रपंच) अज्ञानमात्र है। मूल सत्ता ज्ञानकी ही है—ऐसा मेरा मत है॥ ४१॥

एतत्ते परमं सांख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता॥ ४२॥

मैंने यह उत्तम सांख्यरूप परम ज्ञान तुम्हें बताया है। यह समस्त वेदान्तका सार है और इसमें एकनिष्ठ चित्तवृत्ति होना ही योग है॥ ४२॥

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योगः प्रजायते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित्॥ ४३॥

योगसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और ज्ञानसे योग परिपुष्ट होता है। योग और ज्ञानसे युक्त साधकके लिये कुछ भी अप्राप्त नहीं रहता॥ ४३॥

यदेव योगिनो यांति सांख्यं तदभिगम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स तत्त्ववित्॥ ४४॥

जिस परमपदको योगीजन प्राप्त करते हैं, ज्ञानी भी वही प्राप्त करते हैं। जो योग और सांख्यको एकरूप देखते हैं, वे ही तत्त्वज्ञानी हैं॥ ४४॥

अन्ये च योगिनो वत्स ऐश्वर्यासक्तचेतसः।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव सत्वात्मैक्यमिति श्रुतिः॥ ४५॥

[श्रीरामजी बोले—] हे वत्स! अन्य (दिखावटी) योगीजन तो धन-सम्पत्तिमें आसक्त-चित्तवाले होते हैं और वे उसीमें नष्ट हो जाते हैं। श्रुतिका कथन है कि आत्माकी एकताका बोध ही वास्तवमें प्राप्य परमपद है॥ ४५॥

यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यमचलं महत्।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात्॥ ४६॥

ज्ञानयोगसे युक्त साधक देहान्त होनेपर उस सर्वव्यापी, दिव्य, महान्, अचल परमैश्वर्य पदको प्राप्त करते हैं॥ ४६॥

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वरः।
कीर्तितः सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥ ४७॥
सर्वकामः सर्वरसः सर्वगन्धोऽजरोऽमरः।
सर्वतः पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातनः॥ ४८॥

मैं अव्यक्त आत्मा हूँ, मैं मायापति परमेश्वर हूँ, मैं सर्वव्यापी और सबकी आत्मा हूँ—ऐसा सभी शास्त्रोंमें कहा गया है। मैं ही

सम्पूर्ण कामनाओं, रसों और गन्धादि विषयोंका परमाधार, अजर-अमर, अन्तर्यामी, सनातन और सर्वत्र हाथ-पैरोंसे स्थित आत्मस्वरूप हूँ॥ ४७-४८ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता हृदि संस्थितः।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाकर्णः शृणोम्यहम्॥ ४९ ॥
वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिनः॥ ५० ॥

बिना हाथ-पैरोंवाला होकर भी मैं शीघ्रगामी हूँ और सब कुछ ग्रहण करता हूँ, (सबके) हृदयमें रहता हूँ। मैं बिना आँखोंके देख सकता हूँ और बिना कानके सुन सकता हूँ। मैं यह सब जानता हूँ, पर मुझे कोई नहीं जानता। तत्त्वदर्शी मुझे एकमात्र महान् पुरुष (सत्ता) कहते हैं॥ ४९-५० ॥

निर्गुणामलरूपस्य यत्तदैश्वर्यमुत्तमम्।
यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मायया मम॥ ५१ ॥

मेरे निर्गुण, निर्मल स्वरूप और उत्तम ऐश्वर्यको देवता भी नहीं जान पाते; क्योंकि वे मेरी मायासे मोहित रहते हैं॥ ५१ ॥

यन्मे गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिनः।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम्॥ ५२ ॥

मेरा जो सर्वव्यापी परम गुह्य अव्यय स्वरूप है, उसमें तत्त्वदर्शी योगीजन सायुज्य मुक्ति प्राप्त करके प्रविष्ट होते हैं॥ ५२ ॥

येषां हि न समापन्ना माया वै विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह॥ ५३ ॥

जिन्हें यह विश्वव्यापी माया नहीं छूती, वे योगीजन परम पवित्र निर्वाणपदको मेरे साथ प्राप्त करते हैं॥ ५३ ॥

न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम ते वत्स एतद्वेदानुशासनम्॥ ५४॥
नापुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं हनुमन्क्वचित्।
यदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्ययोगसमाश्रयम्॥ ५५॥

उनका सौ करोड़ कल्पोंमें भी पुनर्जन्म नहीं होता। हे वत्स! मेरी प्रसन्नतासे तुम्हें (यह ज्ञान) प्राप्त हुआ है। यही वेदोंका भी अनुशासन है। हे हनुमान्! सांख्ययोगका आश्रयभूत यह विज्ञान जो मैंने कहा है, उसे कभी अपुत्र, अशिष्य और अयोगी (कुपात्र)-को नहीं बताना चाहिये॥ ५४-५५॥

॥ इति श्रीअद्भुतरामायणे रामगीतायां प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

दूसरा अध्याय

भगवान् श्रीरामद्वारा उपनिषत्-सिद्धान्तका निरूपण

पुना रामः प्रवचनमुवाच द्विजपुङ्गव।
अव्यक्तादभवत्कालः प्रधानं पुरुषः परः॥ १॥

पुनः प्रवचन करते हुए श्रीरामने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मुझ अव्यक्तसे कालकी उत्पत्ति होती है और उससे प्रधान नामक तत्त्व और परम पुरुषकी॥ १॥

तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्मात्सर्वमहं जगत्।
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्॥ २॥

उन्हींसे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। इसलिये मैं ही सारा संसार हूँ। मेरे हाथ-पैर सब ओर हैं और मेरी आँखें, सिर तथा मुख सर्वत्र व्याप्त हैं॥ २॥

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति।
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्॥ ३॥

उस परमात्माके कान सभी ओर हैं। वह सबको व्याप्त करके

स्थित है। वही सभी इन्द्रियों और गुणोंका प्रकाशक है, किंतु सभी इन्द्रियोंसे परे है॥ ३॥

सर्वाधारं स्थिरानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्।
सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्॥ ४॥

वह सभीका आधार, स्थिर, आनन्दरूप, अव्यक्त और अद्वैत है। उसकी कोई उपमा नहीं है और वह किसी प्रमाणसे ज्ञात नहीं हो सकता॥ ४॥

निर्विकल्पं निराभासं सर्वाभासं परामृतम्।
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्॥ ५॥

वह निर्विकल्प, निराभास, सर्वप्रकाशक, परम अमृत, सर्वथा अभिन्न, किंतु भिन्न आधारवान्, शाश्वत, ध्रुव और अव्यय है॥ ५॥

निर्गुणं परमं व्योम तज्ज्ञानं सूरयो विदुः।
स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तरात्परः॥ ६॥

वह निर्गुण और परमाकाशस्वरूप है। विद्वान् उसके ज्ञानके अधिकारी हैं। वह सभी भूत-प्राणियोंका आत्मा है और वही बाहर-भीतर और उसके परे भी विद्यमान है॥ ६॥

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
मया ततमिदं विश्वं जगदव्यक्तरूपिणा॥ ७॥

वह सर्वव्यापी, शान्त, ज्ञानात्मा, परमेश्वर मैं हूँ। अव्यक्त रूपवाले मेरे द्वारा यह सारा संसार व्याप्त है॥ ७॥

मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेद स वेदवित्।
प्रधानं पुरुषं चैव तत्त्वद्वयमुदाहृतम्॥ ८॥

सभी प्राणी-पदार्थ मुझमें स्थित हैं। जो यह जानता है, वही वेदज्ञ है। प्रधान (प्रकृति) और पुरुष (जीवात्मा)—ये दो तत्त्व कहे गये हैं॥ ८॥

तयोरनादिर्निर्दिष्टः कालः संयोजकः परः।
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम्॥ ९॥

दोनोंका परम संयोजक अनादि काल बताया गया है। ये तीनों

अनादि और अनन्त तत्त्व अव्यक्त आत्मामें स्थित रहते हैं॥ ९॥

तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः।
महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत्॥ १०॥

तदात्मक होकर भी उससे भिन्न होनेवाला स्वरूप मेरा ही जानो। महत्-तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त इस सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि उसीसे होती है॥ १०॥

या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
पुरुषः प्रकृतिस्थोऽपि भुङ्क्ते यः प्राकृतान् गुणान्॥ ११॥
अहङ्कारविविक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशकः।
आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानात्मेति कथ्यते॥ १२॥

सभी देहधारियोंको मोहित करनेवाली प्रकृति कही गयी है। पुरुष उस प्रकृतिमें स्थित हुआ प्राकृत गुणोंका उपभोग करता है। अहंकारसे अलग होनेके कारण वह पच्चीसवाँ तत्त्व कहलाता है। प्रकृतिका प्रथम विकार महत् तत्त्व कहा जाता है॥ ११-१२॥

विज्ञानशक्तिर्विज्ञानादहङ्कारस्तदुत्थितः।
एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते॥ १३॥

विज्ञानसे विज्ञानशक्ति और उससे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। महत् आत्मा एक ही है और उसीको अहंकार कहा जाता है॥ १३॥

स जीवः सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकैः।
तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु॥ १४॥

वही जीव और वही अन्तरात्मा नामसे तत्त्वज्ञोंद्वारा कहा जाता है। उसीके द्वारा जन्म-जन्मान्तरोंमें सुख-दुःखादि सभी प्रकारकी अनुभूति होती है॥ १४॥

स विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम्।
तेनाविवेकतस्तस्मात्संसारः पुरुषस्य नु॥ १५॥

वह विज्ञानस्वरूप है, उसका उपकारी (सहचर) मन है और

उसके अविवेकसे ही पुरुषको इस संसारकी प्राप्ति होती है॥ १५॥

स चाविवेकः प्रकृतौ सङ्गात्कालेन सोऽभवत्।
कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः॥ १६॥
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे।
सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः॥ १७॥

वह अविवेक (दीर्घ कालतक) प्रकृतिका संग करनेके कारण हो जाता है। काल ही सभी प्राणी-पदार्थोंका सृजन करता है और वही सृष्टिका संहार भी करता है। सभी कालके वशीभूत रहते हैं। काल किसीके वशमें नहीं होता। वही सनातन सबके भीतर प्रवेश करके सबका नियन्त्रण करता है॥ १६-१७॥

प्रोच्यते भगवान् प्राणः सर्वज्ञः पुरुषः परः।
सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मनः प्राहुर्मनीषिणः॥ १८॥
मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान् परः।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः॥ १९॥

वही भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ और परम पुरुष कहा जाता है। विज्ञजनोंद्वारा मनको सभी इन्द्रियोंसे परे कहा गया है। मनसे परे अहंकार और अहंकारसे परे महत् तत्त्व, महत्‌से परे अव्यक्त और उससे परे पुरुष कहे जाते हैं॥ १८-१९॥

पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत्।
प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः॥ २०॥

पुरुषसे परे भगवान् प्राण हैं। उन्हींका (विस्तार) यह सारा जगत् है। प्राणसे परे आकाश है और आकाशसे परे मैं अग्निरूपी परमेश्वर हूँ॥ २०॥

सोऽहं सर्वत्रगः शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वरः।
नास्ति मत्परमं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते॥ २१॥

वह परमेश्वर मैं सर्वव्यापी, शान्त और ज्ञानस्वरूप हूँ। मुझसे परे कुछ नहीं है। मुझे जानकर जीव मुक्त हो जाता है॥ २१॥

नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्।
ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्॥ २२॥

मुझ एक अव्यक्त आकाशरूप महेश्वरको छोड़कर इस संसारमें कोई स्थावर-जंगम पदार्थ नित्य नहीं है॥ २२॥

सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्।
मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः॥ २३॥

मायापति मैं लीलापूर्वक कालके सहयोगसे इस सम्पूर्ण जगत्की सदा सृष्टि और इसका संहार करता रहता हूँ॥ २३॥

मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत्।
नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम्॥ २४॥

मेरे सान्निध्यसे यह काल सारे जगत्की सृष्टि करता है और वही अनन्तात्मा उसका नियमन करता है—यही वेदोंका अनुशासन है॥ २४॥

॥ इति श्रीअद्भुतरामायणे रामगीतायां द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीरामद्वारा भक्तियोगका वर्णन

वक्ष्ये समाहितमनाः शृणुष्व पवनात्मज।
येनेदं लभ्यते रूपं येनेदं सम्प्रवर्तते॥ १॥

हे पवनात्मज! जिससे यह रूप प्राप्त होता है और जिससे यह क्रियाशील होता है, उसे बताता हूँ, ध्यानसे सुनो॥ १॥

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥ २॥

उत्तम भक्तिके सिवा लोग मुझे तप, दान या यज्ञादिसे नहीं जान सकते॥ २॥

अहं हि सर्वभावानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः।
मां सर्वसाक्षिणं लोका न जानन्ति प्लवङ्गम॥ ३॥

हे वानरश्रेष्ठ! मैं सर्वव्यापी ही सभी प्राणियोंके अन्तरमें स्थित

रहता हूँ, मुझ सर्वसाक्षीको लोग नहीं जान पाते॥ ३॥

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तरः परः।
सोऽहं धाता विधाता च लोकेऽस्मिन् विश्वतोमुखः॥ ४॥

जिसके भीतर यह सब कुछ और जो इस सबके भीतर है, वह सर्वत्र व्याप्त, सर्वनियन्ता, सबका पोषक मैं ही हूँ॥ ४॥

न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः।
ब्राह्मणा मनवः शक्रा ये चान्ये प्रथितौजसः॥ ५॥

मुझे सभी ऋषि-मुनि और देवता भी नहीं जानते तथा ब्राह्मण, मनु, इन्द्रादि और अन्य तेजस्वी भी नहीं पहचानते॥ ५॥

गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम्।
यजन्ति विविधैरग्निं ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः॥ ६॥

वेद निरन्तर मुझ एक परमेश्वरकी ही स्तुति करते हैं। ब्राह्मण वैदिक यज्ञों और विविध अग्निविधानोंसे मेरा ही यजन करते हैं॥ ६॥

सर्वे लोका नमस्यन्ति ब्रह्मलोके पितामहम्।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम्॥ ७॥
अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता चैव फलप्रदः।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्तुतः॥ ८॥

सभी लोग ब्रह्मलोकमें पितामह ब्रह्माको नमन करते हैं। योगीजन भूताधिपति महेश्वरका ध्यान करते हैं, किंतु सभी देवताओंके रूपमें सभीसे पूजित, सर्वात्मा मैं ही सभी यज्ञानुष्ठानोंका भोक्ता और फल प्रदान करनेवाला हूँ॥ ७-८॥

मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः।
तेषां सन्निहितो नित्यं ये भक्ता मामुपासते॥ ९॥

वेदज्ञ धार्मिक विद्वान् मुझे जानते हैं। जो भक्त मेरी उपासना करते हैं, उनके मैं सदा ही सन्निकट रहता हूँ॥ ९॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते।
तेषां ददामि तत्स्थानमानन्दं परमं पदम्॥ १०॥

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और धार्मिक वैश्य मेरी उपासना करते हैं, उन्हें मैं अपना आनन्दस्वरूप परम पद प्रदान करता हूँ॥ १०॥

अन्येऽपि ये विकर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेन मयि सङ्गताः॥ ११॥

दूसरे भी शूद्र आदि निम्न वर्णके लघुकार्योंमें लगे लोग यदि मेरे भक्त होते हैं तो कालक्रमसे मुक्त होकर वे मुझे ही प्राप्त करते हैं॥ ११॥

न मद्भक्ता विनश्यन्ते मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
आदावेतत्प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति॥ १२॥

मेरे दोषरहित भक्त कभी नष्ट नहीं होते। मैंने पहले ही यह प्रतिज्ञा कर रखी है कि मेरे भक्तका विनाश नहीं हो सकता॥ १२॥

यो वा निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति।
यो हि तं पूजयेद्भक्त्या स पूजयति मां सदा॥ १३॥

जो मूर्ख मेरे भक्तकी निन्दा करता है, वह मुझ परमेश्वरका निन्दक है और जो आदरपूर्वक उसकी पूजा करता है, वह सदा मेरी ही पूजा करता है॥ १३॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतः स मे भक्तः प्रियो मतः॥ १४॥

जो भक्त मेरी आराधनाके भावसे पत्र, पुष्प, फल या जल मुझे अर्पित करता है, वह सदा ही मेरा प्रिय भक्त है॥ १४॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
निधाय दत्तवान् वेदानशेषानास्यनिःसृतान्॥ १५॥

मैंने ही सृष्टिके प्रारम्भमें परमेष्ठी ब्रह्माको प्रतिष्ठितकर अपने

मुखसे निकले समस्त वेद उन्हें दिये थे॥ १५॥

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्॥ १६॥

मैं ही समस्त योगियोंका सनातन गुरु हूँ। धार्मिक लोगोंका मैं संरक्षण करता हूँ और वेदविरोधी (दुष्टों)-का संहारक हूँ॥ १६॥

अहं वै सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥ १७॥

मैं ही समस्त योगियोंको संसारसे मुक्त करता हूँ। इस सृष्टिका कारण होकर भी मैं समस्त सृष्टिसे परे हूँ॥ १७॥

अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः।
मायावी मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी॥ १८॥

मैं ही इस सृष्टिका स्रष्टा, पालक और संहारक हूँ। मैं ही मायापति हूँ और मेरी शक्ति माया (अविद्या) इस समस्त संसारको भ्रमित करती रहती है॥ १८॥

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते।
नाशयामि तया मायां योगिनां हृदि संस्थितः॥ १९॥

मेरी ही पराशक्ति विद्या कही जाती है। उससे मैं योगियोंके चित्तमें स्थित होकर माया (अविद्या)-का नाश करता हूँ॥ १९॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च॥ २०॥

मैं ही समस्त शक्तियोंका प्रवर्तक और निवर्तक हूँ। मैं ही सबका अधिष्ठान और अमृतका निधान हूँ॥ २०॥

एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत्।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः॥ २१॥

एक सबके भीतर स्थित शक्ति ही अनन्त, नारायण, जगद्व्यापी,

जगन्नाथ होकर विभिन्न लोकोंकी सृष्टि करती है॥ २१॥

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत्।
तामसी मे समाख्याता कालात्मा रुद्ररूपिणी॥ २२॥

तीसरी महान् शक्ति समस्त सृष्टिका संहार करती है। वह मेरी शक्ति तामसी कालस्वरूपा रुद्ररूपिणी कही जाती है॥ २२॥

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे॥ २३॥

कोई भक्त ध्यानसे, कोई ज्ञानसे, अन्य भक्तियोग अथवा कर्मयोगसे मुझे प्राप्त करते हैं॥ २३॥

सर्वेषामेव भक्तानामेष प्रियतरो मम।
यो विज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा॥ २४॥

इन सभी प्रकारके भक्तोंमें मुझे वह सर्वाधिक प्रिय है, जो आत्मानुसन्धानरूपी विज्ञानसे नित्य मेरी आराधना करता है॥ २४॥

अन्ये च ये त्रयो भक्ता मदाराधनकाङ्क्षिणः।
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्तन्ते च वै पुनः।
मया ततमिदं कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः॥ २५॥

अन्य तीनों प्रकारके भक्त भी जो मेरी आराधनामें ही प्रवृत्त हैं, वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और उनका भी पुनर्जन्म नहीं होता। मैं ही इन सब (प्राणी-पदार्थों)-में व्याप्त हूँ—जो ऐसा जानता है, वह अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है॥ २५॥

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः।
करोति काले भगवान् महायोगेश्वरः स्वयम्॥ २६॥

मैं स्वभावतः इस समस्त प्रपंचको वर्तमान ही देखता हूँ। भगवान् महायोगेश्वर स्वयं समयानुसार इसका नियमन करते हैं॥ २६॥

योगं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभिः।
योगेश्वरोऽसौ भगवान् महादेवो महान् प्रभुः॥ २७॥

शास्त्रोंमें विद्वानोंने उन परमयोगी मायाधीश भगवान् महादेवको योगरूपसे वर्णित किया है, वे ही योगेश्वर सबके स्वामी हैं॥ २७॥

महत्त्वात्सर्वसत्त्वानां परत्वात्परमेश्वरः।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महान् ब्रह्ममयो यतः॥ २८॥

सभी प्राणियोंसे महान् और परे होनेसे भगवान् ब्रह्मा भी परमेश्वर हैं; क्योंकि वे ब्रह्मस्वरूप हैं॥ २८॥

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः॥ २९॥

जो मुझे इस प्रकार (स्रष्टा-पालक-संहारक) महायोगेश्वर ईश्वररूपसे जानता है, वह अविभक्त योगको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है॥ २९॥

सोऽहं प्रेरयिता देवः परमानन्दमाश्रितः।
तिष्ठामि योगी सततं यस्तद्वेद स वेदवित्॥ ३०॥

मैं ही सबका प्रेरक ईश्वर, परमानन्दमें प्रतिष्ठित तथा योगस्वरूपसे नित्य स्थित हूँ—जो ऐसा जानता है, वही वेदोंका सार समझता है॥ ३०॥

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निश्चितम्।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये॥ ३१॥

यह परम रहस्यमय ज्ञान सभी वेदोंमें प्रतिष्ठित है। धार्मिक, आहिताग्नि, शुद्ध चित्तवाले (जिज्ञासुओं)-को ही यह बताना चाहिये॥ ३१॥

॥ इति श्रीअद्भुतरामायणे रामगीतायां तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चौथा अध्याय

भगवान् श्रीरामद्वारा हनुमान्‌जीसे अपने परमात्मस्वरूपका वर्णन

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः॥ १॥

[भगवान् श्रीराम कहते हैं—] मैं सभी लोकोंका एकमात्र स्रष्टा, पालक, संहारक, सर्वात्मा और सनातन हूँ॥ १॥

सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी पिता ह्यहम्।
मय्येवान्तःस्थितं सर्वं चाहं सर्वत्र संस्थितः॥ २॥

सभी वस्तुओंके भीतर रहनेवाला अन्तर्यामी आत्मा तथा सबका पिता मैं ही हूँ। मुझमें ही सारे (प्राणी-पदार्थ) स्थित रहते हैं और मैं भी उन सबमें स्थित रहता हूँ॥ २॥

भवता चाद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपं तु मामकम्।
ममैषा ह्युपमा वत्स मायया दर्शिता मया॥ ३॥

हे वत्स! तुमने जो मेरा अद्भुत स्वरूप देखा है, उसे मेरे समान जानो, उसे मैंने ही मायापूर्वक तुम्हें दिखाया है॥ ३॥

सर्वेषामेव भावानामन्तरा समवस्थितः।
प्रेरयामि जगत्सर्वं क्रियाशक्तिरियं मम॥ ४॥

सभी प्राणियोंके अन्तःस्थित होकर मैं सारे संसारको कार्यमें प्रेरित करता हूँ—यह मेरी क्रियाशक्ति है॥ ४॥

मयेदं चेष्टते विश्वं मत्स्वभावानुवर्ति च।
सोऽहं काले जगत्कृत्स्नं करोमि हनुमन् किल॥ ५॥
संहराम्येकरूपेण द्विधावस्था ममैव तु।
आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्तकः॥ ६॥

संसारमें जो भी क्रियाकलाप होता है, वह मेरे द्वारा ही संचालित

है और मेरे स्वभावानुरूप होता है। हे हनुमान्! समय आनेपर मैं ही उस समस्त जगत्की सृष्टि और संहार करता हूँ—ये दोनों स्थितियाँ मेरी ही हैं। मैं ही आदि-मध्य और अन्तसे रहित तथा मायातत्त्वका संचालक हूँ॥ ५-६॥

क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ।
ताभ्यां सञ्जायते सर्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्॥ ७॥

मैं सृष्टिके प्रारम्भमें प्रकृति और पुरुषमें क्षोभ उत्पन्न करता हूँ। उनके परस्पर मेलसे ही सब उत्पन्न होता है॥ ७॥

महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भितम्।
यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः॥ ८॥
हिरण्यगर्भो मार्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः।
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम्॥ ९॥
दत्तवानात्मजान् वेदान् कल्पादौ चतुरः किल।
स मन्नियोगतो ब्रह्मा सदा मद्भावभावितः॥ १०॥

महदादिके (पूर्वोक्त) क्रमसे मेरा ही तेज प्रकाशित होता है। जो सारे संसारका साक्षी, कालचक्रका नियन्ता, हिरण्यगर्भ सूर्य है, वह भी मेरे ही शरीरसे उत्पन्न हुआ है। उसको मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य तथा सनातन ज्ञानयोग प्रदान किया है। अपनेसे उपपन्न चारों वेद भी कल्पके आरम्भमें मैंने प्रदान किये। ब्रह्मा मेरे अनुशासनमें सदा मेरे अनुकूल रहते हैं॥ ८—१०॥

दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदा वहति स्वयम्।
स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित्।
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसम्भवः॥ ११॥

वे मेरे उस दिव्य ऐश्वर्यको सदा स्वयं धारण करते हैं। वे सर्वज्ञ ब्रह्मा मेरे आदेशानुसार सभी लोकोंका निर्माण करते हैं। वे चतुर्मुख स्वरूपसे स्वयम्भू होकर सारी सृष्टिकी रचना करते हैं॥ ११॥

योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवाव्ययः।
ममैव परमा मूर्तिः करोति परिपालनम्॥ १२॥

जो अनन्त लोकोंके स्वामी अव्यय नारायण हैं, वे मेरे ही परमस्वरूप हैं और सृष्टिका परिपालन करते हैं॥ १२॥

योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः।
मदाज्ञयासौ सततं संहरत्येव मे तनुः॥ १३॥

जो भगवान् कालात्मक रुद्र हैं, वे सभीका अन्त करनेवाले तथा मेरे ही स्वरूप हैं। वे मेरी आज्ञासे निरन्तर (इस सृष्टिका) संहार करते रहते हैं॥ १३॥

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि।
पाकं च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिचोदितः॥ १४॥

जो अग्निदेव देवताओंके लिये हव्य और पितृगणोंके लिये कव्य ले जाते हैं तथा अन्नादिको पकानेका कार्य करते हैं, वे मेरी ही शक्तिसे संचालित होते हैं॥ १४॥

भुक्तमाहारजातं यत्पचत्येतदहर्निशम्।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः॥ १५॥

भगवान् वैश्वानर अग्नि भी मुझ परमेश्वरके अनुशासनसे ही खाये हुए भोजनको रात-दिन पचाते हैं॥ १५॥

यो हि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुङ्गवः।
स सञ्जीवयते सर्वमीशस्यैव नियोगतः॥ १६॥

समस्त जलाशयोंके आदिकारण देवश्रेष्ठ वरुण मुझ परमेश्वरकी आज्ञासे ही सबको जीवन प्रदान करते हैं॥ १६॥

योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवो निरञ्जनः।
मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि॥ १७॥

जो निरंजन प्राणदेव प्राणियोंके भीतर और बाहर संचरण करते रहते हैं, वे मेरी ही आज्ञासे जीवोंका शरीर धारण करते हैं॥ १७॥

योऽपि सञ्जीवनो नृणां देवानाममृताकरः।
सोमः स मन्नियोगेन चोदितः किल वर्तते॥ १८॥

जो देवताओंके लिये अमृतके भण्डार और मनुष्योंको नवजीवन प्रदान करनेवाले सोमराज चन्द्र हैं, वे मेरी ही आज्ञासे प्रेरित होते हैं॥ १८॥

यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रकाशयति सर्वदा।
सूर्यो वृष्टिं वितनुते शास्त्रेणैव स्वयम्भुवः॥ १९॥

जो अपने प्रकाशसे समस्त संसारको सदा आलोकित करते हैं और वृष्टि प्रदान करते हैं, वे सूर्यदेव [मुझ] स्वयम्भू परमेश्वरके ही अधीन हैं॥ १९॥

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः।
यज्ञानां फलदो देवो वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २०॥

जो समस्त संसारके शासक, सभी देवताओंके स्वामी, यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाले इन्द्रदेव हैं, वे भी मेरी आज्ञाके वशवर्ती हैं॥ २०॥

यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः॥ २१॥

जो दुष्टोंका निग्रह करते हैं, सदा नियमानुसार आचरण करते हैं, वे वैवस्वत यमराज भी [मुझ] परमेश्वरके आज्ञानुवर्ती हैं॥ २१॥

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा॥ २२॥

जो सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके स्वामी—धनाध्यक्ष और धन प्रदान करनेवाले कुबेर हैं, वे भी सदा [मुझ] ईश्वरके अनुशासनमें व्यवहार करते हैं॥ २२॥

यः सर्वरक्षसां नाथस्तापसानां फलप्रदः।
मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा॥ २३॥

जो सभी राक्षसोंके स्वामी, तपस्वियोंको फल प्रदान करनेवाले निर्ऋतिदेव हैं, वे मेरी ही आज्ञाके अनुसार सदा व्यवहार करते हैं॥ २३॥

वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः।
ईशानः सर्वभक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्ममाज्ञया॥ २४॥

वेताल और भूतगणोंके स्वामी, सभी भक्तोंको भोग (इष्ट) फल प्रदान करनेवाले ईशानदेव भी मेरी आज्ञामें ही रहते हैं॥ २४॥

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २५॥

अंगिराके शिष्य और रुद्रगणोंके प्रमुख जो योगियोंके संरक्षक हैं, वे वामदेव नित्य मेरी आज्ञाका अनुसरण करते हैं॥ २५॥

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्नकारकः।
विनायको धर्मनेता सोऽपि मद्वचनात्किल॥ २६॥

जो सम्पूर्ण संसारके [प्रथम] पूज्य और विघ्नराज हैं, वे धर्माध्यक्ष विनायक भी मेरे वचनोंके अधीन हैं॥ २६॥

योऽपि वेदविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः।
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयम्भूप्रतिचोदितः॥ २७॥

जो वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ देवसेनापति भगवान् स्कन्द हैं, वे भी सदा [मुझ] स्वयम्भूसे ही प्रेरित होते हैं॥ २७॥

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः॥ २८॥

जो मरीचि आदि महर्षि प्रजापतिरूपसे विविध लोकोंको उत्पन्न करते हैं, वे [मुझ] परमेश्वरकी आज्ञाके अधीन ही ऐसा करते हैं॥ २८॥

या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम्।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात्॥ २९॥

जो भगवती लक्ष्मी सभी प्राणियोंको महान् ऐश्वर्य प्रदान करती हैं, वे नारायणकी अर्धांगिनी मेरे अनुग्रहसे ही ऐसा करती हैं॥ २९॥

वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती।
सापीश्वरनियोगेन चोदिता सम्प्रवर्तते॥ ३०॥

जो देवी सरस्वती वाणीका विशद वैभव प्रदान करती हैं, वे

भी [मुझ] परमेश्वरकी प्रेरणासे ही ऐसा करती हैं॥ ३०॥

याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात्तारयत्यपि।
सावित्री संस्मृता देवी देवाज्ञानुविधायिनी॥ ३१॥

जो स्मरण करनेपर समस्त (धार्मिक) पुरुषोंको नरकोंसे बचाती हैं, वे देवी सावित्री भी [मुझ] भगवान्‌की ही आज्ञानुवर्तिनी हैं॥ ३१॥

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी।
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा॥ ३२॥

परादेवी पार्वती, जो ध्यान करनेपर विशिष्ट ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाली हैं, वे भी मेरे वचनकी अनुगामिनी हैं॥ ३२॥

योऽनन्तो महिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः॥ ३३॥

जो अनन्त महिमाशाली देवश्रेष्ठ शेष सम्पूर्ण लोकोंको अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे भी [मुझ] परमात्माके अधीन हैं॥ ३३॥

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः॥ ३४॥

जो संवर्तक अग्निदेव नित्य वड़वाग्निके रूपसे समस्त समुद्रोंका जल पीते रहते हैं, वे भी [मुझ] ईश्वरके अधीन हैं॥ ३४॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ।
अन्याश्च देवताः सर्वा मच्छासनमधिष्ठिताः॥ ३५॥

आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्‌गण और अश्विनीकुमार तथा अन्य सभी देवगण मेरे ही अनुशासनमें रहते हैं॥ ३५॥

गन्धर्वा उरगा यक्षाः सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।
भूतरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः शास्त्रे स्वयम्भुवः॥ ३६॥

गन्धर्व, सर्प, यक्ष, सिद्ध, साध्य, चारण, भूत, राक्षस, और पिशाच (सभी मुझ) स्वयम्भूके शासनाधीन हैं॥ ३६॥

कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः।
ऋत्वब्दमासपक्षाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः॥ ३७॥

युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने।
पराश्चैव परार्धाश्च कालभेदास्तथापरे॥ ३८॥

कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिन-रात्रि, ऋतुएँ, वर्ष, मास और पक्ष—सभी [मुझ] प्रजापतिके शासनमें स्थित हैं। युग और मन्वन्तर, पर और परार्धादि जो कालके अन्य भेद हैं, वे भी मेरे ही अधीन रहते हैं॥ ३७-३८॥

चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नियोगादेव वर्तन्ते सर्वाण्येव स्वयम्भुवः॥ ३९॥

चार प्रकारके प्राणी, चर और अचर पदार्थ—सभी मुझ स्वयम्भू परमेश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं॥ ३९॥

पत्तनानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात्।
ब्रह्माण्डानि च वर्तन्ते देवस्य परमात्मनः॥ ४०॥

सभी लोक और भुवन तथा ब्रह्माण्ड [मुझ] परमात्मदेवकी ही आज्ञामें रहते हैं॥ ४०॥

अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः॥ ४१॥

अतीतके भी असंख्य ब्रह्माण्ड अपने समस्त पदार्थ-समूहोंके साथ मेरी आज्ञासे ही संचालित हुए हैं॥ ४१॥

ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह वस्तुभिरात्मगैः।
हरिष्यन्ति सहैवाज्ञां परस्य परमात्मनः॥ ४२॥

भविष्यमें भी वस्तुसमूहोंसे भरे जो ब्रह्माण्ड होंगे, वे [मुझ] परात्पर परमात्माकी आज्ञासे ही रहेंगे और समाप्त हो जायँगे॥ ४२॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगान्मम वर्तते॥ ४३॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और प्राणी-पदार्थोंकी आदि प्रकृति मेरे ही अनुशासनमें रहती है॥ ४३॥

याशेषसर्वजगतां मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
मायापि वर्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः॥ ४४॥

सभी संसार और प्राणिमात्रको मोहित करनेवाली जो मायाशक्ति (अविद्या) है, वह भी सदा [मुझ] परमेश्वरके अधीन है॥ ४४॥

विधूय मोहकलिलं यथा पश्यति तत्पदम्।
सापि विद्या महेशस्य नियोगाद्वशवर्तिनी॥ ४५॥
बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्॥ ४६॥

मोहके कीचड़को हटाकर परमपदका दर्शन करानेवाली जो विद्या (ज्ञानशक्ति) है, वह भी [मुझ] परमेश्वरके अनुशासनमें ही रहती है। अधिक कहनेसे क्या लाभ है, यह सारा संसार मेरी ही शक्तिसे उत्पन्न है॥ ४५-४६॥

मयैव पूर्यते विश्वं मय्येव प्रलयं व्रजेत्।
अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः॥ ४७॥

मुझसे ही इस संसारका भरण-पोषण होता है और मुझमें ही इसका लय होता है। मैं ही स्वयंप्रकाश, सनातन, सर्वेश्वर प्रभु हूँ॥ ४७॥

परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते।
इत्येतत्परमं ज्ञानं भवते कथितं मया॥ ४८॥

मैं ही परमात्मा, परब्रह्म हूँ; मुझसे अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह परम ज्ञान मैंने तुम्हारे लिये बता दिया॥ ४८॥

ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।
मायामाश्रित्य जातोऽहं गृहे दशरथस्य हि॥ ४९॥

इसे जानकर प्राणी जन्म और संसारके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मैंने अपनी मायाका आश्रय लेकर दशरथके घरमें [पुत्ररूपसे] जन्म लिया है॥ ४९॥

रामोऽहं लक्ष्मणो ह्येष शत्रुघ्नो भरतोऽपि च।
चतुर्धा सम्प्रभूतोऽहं कथितं तेऽनिलात्मज॥ ५०॥

मैंने ही राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न—इन चार रूपोंमें जन्म लिया है। हे पवनात्मज! यह मैंने तुम्हें बता दिया॥ ५०॥

मायास्वरूपं च तव कथितं यत्प्लवङ्गम।
कृपया तद्धृदा धार्यं न विस्मर्तव्यमेव हि॥ ५१॥

हे वानरश्रेष्ठ! मायास्वरूप भी मैंने तुम्हें कृपापूर्वक बताया है। इसे हृदयमें धारण करना और कभी भूलना मत॥ ५१॥

येनायं पठ्यते नित्यं संवादो भवतो मम।
जीवन्मुक्तो भवेत्सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५२॥

जो मेरे-तुम्हारे इस संवादको नित्य पढ़ता है, वह जीवन्मुक्त होकर सभी पापोंसे छूट जाता है॥ ५२॥

श्रावयेद्वा द्विजाञ्छुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्।
यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम्॥ ५३॥

जो इसे ब्रह्मचारी, शुद्धचित्त ब्राह्मणोंको सुनाता है या जो इसके अर्थका चिन्तन-मनन करता है, वह परमगतिको प्राप्त करता है॥ ५३॥

यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ५४॥

जो इसे नियमपूर्वक भक्तिभावसे नित्य सुनता है, वह सभी पापोंसे रहित होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है॥ ५४॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः।
श्रोतव्यश्चापि मन्तव्यो विशेषाद् ब्राह्मणैः सदा॥ ५५॥

इसलिये बुद्धिमान् लोगोंको विशेषकर ब्रह्मपरायणजनोंको पूरा प्रयत्न करके इसे पढ़ना-सुनना चाहिये और इसपर सदा मनन करना चाहिये॥ ५५॥

॥ इति श्रीअद्भुतरामायणे रामगीतायां चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ रामगीता सम्पूर्णा॥